IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

"भारतीय जाति व्यवस्थाओ के मूलभूत सिद्धांतो का अध्ययन"

सौदान सिंह[1] ,डा0 हरेन्द्र कुमार[2]

[1]शोधार्थी, समाज शास्त्र ,मोनाड यूनिवर्सिटी हापुड़

[1]शोध पर्यवेक्षक, मोनाड यूनिवर्सिटी हापुड़

सार:

जाति व्यवस्था एक सामाजिक बुराई है जो प्राचीन काल से भारतीय समाज में मौजूद है। वर्षों से लोग इसकी आलोचना कर रहे हैं लेकिन फिर भी जाति व्यवस्था ने हमारे देश के सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर अपनी पकड़ मजबूत बनाए रखी है। भारतीय समाज में सदियों से कुछ सामाजिक बुराईयां प्रचलित रही हैं और जाति व्यवस्था भी उन्हीं में से एक है। हालांकि, जाति व्यवस्था की अवधारणा में इस अवधि के दौरान कुछ परिवर्तन जरूर आया है और इसकी मान्यताएं अब उतनी रूढ़िवादी नहीं रही है जितनी पहले हुआ करती थीं, लेकिन इसके बावजूद यह अभी भी देश में लोगों के धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन पर असर डाल रही है।इस शोधपत्र में शोधार्थी ने भारतीय जाति व्यवस्थाओ पर एक जटिल अध्ययन प्रस्तुत किया है

कूट शब्द: भारतीय जाति ,व्यवस्थाए , धार्मिक , वर्ग आदि।

1.0 प्रस्तावना:

भारतीय जाति व्यवस्था के विभिन्न पक्षों को समझने के साथ यह जानना आवश्यक है कि इस जटिल और व्यापक व्यवस्था की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? वास्तव में भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का इतिहास इतना प्राचीन है कि इस व्यवस्था की उत्पत्ति से सम्बन्धित किसी प्रमाणित आधार को समझ सकना बहुत कठिन है। यही कारण है कि पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों ने भिन्न–भिन्न आधारों पर जाति व्यवस्था की उत्पत्ति को स्पष्ट किया है, जिनमें से कुछ प्रमुख सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है।

2.0 भारतीय जाति व्यवस्थाओ के मूलभूत सिद्धांत:

2.1 **परम्परागत सिद्धान्तः**– इस सिद्धान्त का स्त्रोत विभिन्न हिन्दू धर्म ग्रन्थ जैसे वेद,उपनिषद,गीता,महाभारत तथा विभिन्न स्मृतियाँ हैं। इन सभी धर्म ग्रन्थों ने कुछ अलौकिक विश्वासों तथा धार्मिक आधार पर जाति व्यवस्था की उत्पत्ति को स्पष्ट किया है। इसलिये हम इन विचारों को "परम्परागत सिद्धान्त" के नाम से सम्बोधित करते हैं। भारत में जातियों के निर्माण की प्रक्रिया वर्ण विभाजन से आरम्भ हुई। वर्णो के विभाजन का सबसे पहला उल्लेख {ग्वेद के "पुरूष सूक्त" में मिलता है। इस सूक्त में बताया गया कि ब्राह्मणों का जन्म ब्रह्म के मुख से,क्षत्रियों का भुजाओं से, वैश्यों का उदर के निम्न भाग से तथा शूद्रों का जन्म ब्रह्म के पैरों से हुआ है। उपनिषदों में यह उल्लेख मिलता है कि आरम्भ में ब्रह्म ने केवल ब्राह्मणों को ही जन्म दिया लेकिन जब ब्राह्मणों के द्वारा सभी कार्य पूरे नहीं किये जा सके, तब विभिन्न सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये ब्रह्म ने क्रमशः क्षत्रिय,वैश्य, तथा शूद्र वर्ग का निर्माण किया। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा कि चारों वर्णो का निर्माण मैनें उनके गुण और कर्म के अनुसार किया है। स्मृतियों में मनुस्मृति वह पहला धर्म ग्रन्थ है, जिसमें वर्णो की उत्पत्ति के अतिरिक्त जातियों के निर्माण पर भी प्रकाश डाला गया हैं इसके अनुसार विभिन्न वर्ण के लोगों में से जिन्होंने अपने–अपने वर्ण धर्म का पालन नहीं किया अथवा विवाह से सम्बन्धित अनुलोम के नियम का उल्लंघन किया, उनसे जन्म लेने वाली वर्ण संकर संतानों से एक ही वर्ण के अन्दर विभिन्न उच्च और निम्न जातियों का निर्माण होने लगा।

2.2 **प्रजातीय सिद्धान्तः**– अनेक विद्वानों ने जाति व्यवस्था की उत्पत्ति कोप्रजातीय भिन्नता,प्रजातीय संघर्षो तथा प्रजातीय मिश्रण के आधार पर स्पष्ट किया। इनमें हरबर्ट , रिजले तथा डी० एन० मजूमदार प्रमुख हैं। जबकि धूरिये तथा एन० के० दत्ता ने भी इनके अनेक विचारों को स्वीकार किया है। रिजले के अनुसार आज से बहुत समय पहले जब आर्य लोग फारस की ओर से भारत में आये तब उनका यहाँ के मूल निवासी द्रविड़ों से भारी संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में आर्यो की विजय होने के कारण उन्होंने द्रविड़ों से दासों के समान व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। आर्यो में स्त्रियों की कमी होने के कारण उन्होंने अनुलोम का नियम बनाया जिसके अनुसार आर्य लोग द्रविड़ स्त्रियों से विवाह कर सकते थे लेकिन द्रविड़ को आर्य स्त्रियों से विवाह करने की अनुमति नहीं थी। बताया कि भारत में समय–समय पर अनेक प्रजातीय समूहों ने प्रवेश किया। कालान्तर में विभिन्न प्रजातीय समूहों तथा रक्त के मिश्रण से बनने वाले नये समूहों से विभिन्न जातियों की संख्या में वृद्वि होने लगी। विभिन्न जातियों के बीच विवाह,सामाजिक सम्पर्क,खान–पान तथा व्यवसाय से सम्बन्धित प्रतिबन्ध रक्त की विशुद्धता को बनाये रखने से ही सम्बन्धित है।

2.3 **व्यावसायिक सिद्धान्तः**– इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक "नेस फील्ड तथाब्लन्ट हैं।" दलहमन ने भी इन्हीं के विचारों का समर्थन किया है। नेसफील्ड का विचार है कि जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति को प्रजातीय आधार पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता। अपने आरम्भिक काल में भारत में किसी तरह का सामाजिक और व्यवसायिक विभाजन नहीं था। यज्ञों तथा कर्मकाण्डों को पूरा करने की सभी लोगों को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। धीरे–धीरे जब यज्ञों का और कर्मकांण्डों का काम बहुत ज़टिल हो गया तब इन्हें पूरा करने वाले व्यक्तियों को समाज में सर्वोच्च स्थिति प्राप्त हो गयी। इन्हीं व्यक्तियों को ब्राह्मणों का एकाधिकार हो गया तब शक्ति सम्पन्न लोगों ने शासन के कार्य पर अधिकार कर लिया यही लोग क्षत्रिय कहलायें। इसके बाद जिस वर्ग ने व्यापार और पशु–पालन पर अध्ि ाकार स्थापित किया उसे वैश्य कहाँ जाने लगा। अन्य वर्णो के पास केवल वह व्यवसाय शेष रह गये जो अधिक महत्वपूर्ण नहीं थे। इस प्रकार विभिन्न व्यवसायों की उच्चता और निम्नता के आधार पर ही विभिन्न वर्गों के एक–दूसरे की तुलना में उच्च और निम्न स्थिति प्राप्त हो गयी। ब्लन्ट ने यह स्पष्ट किया कि जब विभिन्न व्यवसाय करने वाले वर्ग शक्तिशाली समूहों में संगठित हो गये। तब उन्होंने अपने समूहों में विवाह की नीति को अपना लिया, जिससे उनका व्यवसायिक ज्ञान दूसरे समूहों को न मिल सके। इसी के फलस्वरूप व्यवसाय के आधार पर बनने वाली जातियों के बीच विवाह, खान–पान, व्यवसाय तथा सामाजिक सम्पर्क का विभाजन बढ़ता गया।

2.4 **बाह्मणवादी सिद्धान्त** :– जी०एस०धुरिये इस सिद्धान्त के प्रतिपादक है।आपके अनुसार जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति ब्राह्मणों की एक चतुर और सुनियोजित योजना का परिणाम है। धुरिये के अनुसार भारत में आने से पहले ही आर्य प्रजाति के लोगों में वर्गभेद कर्मकांण्डों की पवित्रता और निम्न वर्ग के लोगों से दासों के समान व्यवहार जैसी विशेषताओं का प्रचलन था। यहाँ आकर उन्होंने जब द्रविड़ों पर विजय प्राप्त कर ली तब उनसे न केवल दासों के समान व्यवहार करना आरम्भ कर दिया बल्कि कर्मकांण्ड़ों की पवित्रता के आधार पर धीर– ध गिरे स्वंय भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जैसे तीन वर्णो में विभाजित हो गये। आरम्भ में तीनों वर्णो

के बीच विवाह, व्यवसाय, खान–पान और सामाजिक सम्पर्क से सम्बन्धित किसी तरह के प्रतिबन्ध नहीं थे,यद्यपि यह तीनों वर्ण द्रविड़ों से अपना मिश्रण रोकने के सभी संभव प्रयत्न करते रहते थे। इसके बाद भी यहाँ एक ऐसी इण्डों–आर्यन संस्कृति का विकास होने लगा,जिसने ब्राह्मण वर्ण को सबसे अधिक पवित्र मानकर उसे विशेष अधिकार दे दिये। स्वंय ब्राह्मणों ने भी अपनी स्थिति को सुरक्षित करने के लिये अनुलोम विवाह के नियम, तथा पवित्रता और अपवित्रता की धारणा का व्यापक रूप से प्रचार किया। इसके फलस्वरूप अधिक पवित्र जातियां अपने से कम पवित्र जातियों से सामाजिक सम्पर्क विवाह और खान–पान के प्रतिबन्ध अपनाने लगी। यह प्रक्रिया उत्तर भारत से आरम्भ होकर दक्षिण भारत तक फैल गयी तथा पवित्रता और अपवित्रता के आधार पर जातियों का विभाजन निरन्तर बढ़ता गया।

2.5 **धार्मिक सिद्धान्त**:– होकार्ट तथा सेनार्ट इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक है। होकार्ट के अनुसार जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति को भारत के धार्मिक जीवन तथा कर्मकाण्डों की व्यापकता के आधार पर ही समझा जा सकता है। भारत में जहाँ कर्मकाण्डों का अति प्राचीन काल से विशेष महत्व रहा है, वही कर्मकाण्डों से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओं को पूरा करने के लिये विभिन्न समूहों की आवश्यकता होती है। इन क्रियाओं में ब्राह्मण मन्त्रों का उच्चारण करता है जबकि निमन्त्रण देने, फूल लाने, पानी की व्यवस्था करने, हजामत बनाने, स्वच्छता रखने तथा अनेक दूसरे कार्यो के लिये अन्य व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। यह सभी सेवायें भी समान महत्व की नहीं होती है बल्कि इनमें पवित्रता और अपवित्रता के आधार पर ऊँच–नीच का स्पष्ट क्रम पाया जाता है। इस प्रकार कर्मकाण्डों से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओं को पूरा करने वाले समूह एक–दूसरे से भिन्न स्थिति वाली अनेक जातियों में परिवर्तित हो गये।

2.6 **उद्विकासीय सिद्धान्त** :–जाति व्यवस्था की उत्पत्ति का उद्विकासीयसिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि भारत की जाति व्यवस्था किसी एक दशा का परिणाम नहीं है बल्कि अनेक दशाओं के प्रभाव से इस व्यवस्था का विकास अनेक स्तरों से गुजरते हुये हुआ। जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति का प्रथम स्तर भारत में आर्यो और द्रविड़ों के बीच होने वाले संघर्ष थे। दूसरे स्तर में अधिक महत्व पूर्ण कार्यो का अथवा व्यवसायों पर अधिकार करने के लिये स्वंय आर्यो के बीच ही संघर्ष होने लगा। उस समय धर्म और धार्मिक क्रियाओं का महत्व सबसे अधिक था। फलस्वरूप आर्यो में जो समूह सबसे अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ, उसने धार्मिक क्रियाओं पर अधिकार कर लिया इसी वर्ग को ब्राह्मण कहा गया, जिसकी स्थिति सर्वोच्च हो गयी। इसके बाद जिस समूह ने प्रशासन पर अधिकार कर लिया, उन्हें क्षत्रिय कहा गया। आर्यो में शेष रह गये समूहों ने व्यापार तथा पशुपालन जैसी आर्थिक क्रियाओं को अपने अधिकार में ले लिया, यही वर्ण वणिक अथवा वैश्य कहलाया। इस प्रकार सम्पूर्ण समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा दास जैसे चार प्रमुख वर्णो में विभाजित हो गया। तीसरा स्तर वह है जिसमें पवित्रता और अपवित्रता के साथ रक्त की विशुद्धता की धारणा बहुत प्रबल बनने लगी। इसी धारणा के आधार पर धीरे–धीरे विभिन्न वर्णो के बीच पृथकता बढ़ने लगी इसी पृथकता के फलस्वरूप ही समाज में व्यवसाय,विवाह,खान–पान तथा सामाजिक सम्पर्क से सम्बन्धित विभिन्न निषेध विकसित हो गये।

2.7 **डा० भीमराव अम्बेड़कर का सिद्धान्त**:– भारत में जाति की बनावट, उत्पत्तितथा प्रसार के सन्दर्भ में अपना सिद्धान्त प्रस्तुत करते हुये डा० अम्बेडकर ने जाति के अन्दर विवाह को ही जाति का विच्छेदक लक्षण माना है। डा० अम्बेडकर के मतानुसार उसका अधिक पृथक्करण करने के परिणाम स्वरूप ऐसा दिखाई देता है कि स्वगुट के अन्तर्गत विवाह पद्धति का गुट के बाहर विवाह पद्धति पर बर्चस्व होने के कारण कम–से–कम भारत में तो जाति निर्माण हुई है। डा० अम्बेडकर के अनुसार 'समाज में सदा ही वर्ग का अस्तिव होता है। वर्ग के समावेश से ही समाज बनता है, लेकिन समाज में निश्चित ऐसे तत्व विद्यमान रहते हैं। यह वस्तु स्थिति है। उनका आधार भिन्न–भिन्न हो सकता है। वह आर्थिक,बौद्धिक व सामाजिक हो सकता है लेकिन समाज का व्यक्ति सदा ही किसी–न–किसी वर्ग का अंग होता है। यह सर्वमान्य वस्तु स्थिति है, जिसका हिन्दू समाज भी अपवाद नहीं है। इसलिये जाति में जिसका रूपान्तर हुआ ऐसा वर्ग कौन सा होगा, यह हमें पहले तय करना है। क्योंकि जाति तथा वर्ग आमने–सामने पड़ोसी हैं, जिनका अल्प अंतर के कारण अस्तित्व भिन्न होता है। इसलिये डा० अम्बेडकर कहते है कि जाति एक स्वंय मर्यादित वर्ग है।

3.0 निष्कर्ष:

जाति व्यवस्था जो भारत में बहुत पुअरने समय से चली आ रही एक गंभीर समस्या है ,अब भी इसका असर विद्यमान है इस शोध पत्र में भारतीय जाति व्यवस्थाओ के मूलभूत सिद्धांतो का अध्ययन बड़े ही प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है जो इसके सर को समझने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

संदर्भ:

1. ई. ए. एच. एंथोविन : द ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑव् बांबे, बंबई 1920;
2. ई. थर्स्टन : कास्ट्स ऐंड ट्राइब्स ऑव् सदर्न इंडिया, मद्रास, 1909;
3. विलियम क्रुक : द ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑव नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज ऐंड अवध, गवर्नमेंट प्रेस, कलकत्ता, 1896; *आर.बी. रसेल : ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑव सेंट्रल प्राविंसेज ऑव इंडिया, मैकमिलन, लंदन, 1916;
4. एच.ए. रोज : ए ग्लासरी ऑव द ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑव द पंजाब ऐंड नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज, लाहौर, 1911; *एच. एच. रिजले : ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑव बंगाल - इथनोग्राफिक ग्लासरी, कलकत्ता, 1891;
5. जे. एम. भट्टाचार्य : हिंदू कास्ट्स ऐंड सेक्ट्स, कलकत्ता, 1896;
6. श्रीधर केतकर : द हिस्ट्री ऑव कास्ट इन इंडिया, न्यूयॉर्क, 1909;